RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-07
July-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

दिव्या : नारी चेतना

दया शंकर कुमार

यू.जी.सी.–नेट / जे.आर.एफ.–2014

दिव्या मूलतः नारी समस्या पर केन्द्रित उपन्यास है। यशपाल ने विभिन्न उपन्यासों में समाज के विभिन्न वंचित वर्गों की समस्या को उठाया है। दिव्या में वे नारी समस्या के प्रति प्रतिबद्ध नज़र आते हैं। इसका प्रमाण है कि उपन्यास का समर्पण वे प्रतीकात्मक भाषा में नारी को ही करते हैं :–

"तुमको .....
निरंतर पराभव और अभिशाप सहकर भी,
जिसका जीवन–द्वीप स्नेह से प्रज्वलित है।"[1]

यशपाल ने इस उपन्यास में नारी की समस्या और इसके समाधान पक्ष पर बहुआयामी चिंतन किया है। उन्होंने कई ऐसे चरित्रों की सृष्टि की है जो नारी समस्या के संबंध में एक विशेष दृष्टिकोण का निर्वाह करते हैं। इन सभी चरित्रों की क्रिया–प्रतिक्रिया से समस्या संश्लिष्ट रूप में उभरती है।

एक महत्वपूर्ण चरित्र है प्रेस्थ। प्रेस्थ के माध्यम से यशपाल उस भोगवादी नज़रिये को उभारते हैं जो नारी को पुरूष के लिए सिर्फ भोग की वस्तु मानता है। आज के उपभोक्तावादी दौर में जिस प्रकार नारी का वस्तुकरण हुआ है, वैसा ही दृष्टिकोण प्रेस्थ का है। वह पृथुसेन को समझाते हुए कहता है :– "पुत्र, स्त्री जीवन की पूर्ति नहीं, जीवन की पूर्ति का एक उपकरण और साधन मात्र है। सामर्थ्यवान, सफल मनुष्य अनेक स्त्रियाँ प्राप्त कर सकता है परन्तु सफलता के अवसर जीवन में अनेक नहीं आते।"

यह दृष्टिकोण सिर्फ प्रेस्थ के माध्यम से ही नहीं दिखाया गया है बल्कि कुछ अन्य चरित्रों जैसे माताल वृक के माध्यम से भी प्रस्तुत हुआ है। एक विशेष स्थिति में दिव्या खुद महसूस करती है कि नारी पुरूष के लिए सिर्फ भोग्या मात्र है। उसकी मनःस्थिति यशपाल के इन शब्दों में दिखती है:– "कठोर धीर रूद्रधीर, कोमल पृथुसेन, अभद्र मारिश और माताल वृक नारी के लिए सब समान हैं। जो भोग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है, उसके लिए अन्यत्र शरण कहाँ? उसे सब भोगेंगे ही। भय किससे नहीं?"

नारी के संबंध में दूसरा दृष्टिकोण बौद्ध धर्म के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। दरअसल, यह दृष्टिकोण सिर्फ बौद्धों का नहीं बल्कि चार्वाकों के अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिकों का है। ये सभी दर्शन नारी को त्याज्य मानते रहे हैं। उपन्यास में बौद्ध धर्म को इसलिए दिखाया गया है ताकि यशपाल दिखा सकें कि जो बौद्ध धर्म वर्ण संबंधी मामलों में अत्यधिक क्रांतिकारी था, नारी के संबंध में वह भी कैसे यथास्थितिवादी मानसिकता का शिकार है। अंतिम प्रसंग में दिव्या और भिक्षु पृथुसेन का यह संवाद बौद्ध धर्म की इसी विसंगति को उभारता है:–"कंपित स्वर में दिव्या ने प्रश्न किया – 'भंते, भिक्षु के धर्म में नारी का क्या स्थान है?' भिक्षु ने धीमे स्वर में उत्तर दिया– 'देवी! भिक्षु का धर्म निर्वाण है। नारी प्रवृत्ति का मार्ग है। भिक्षु के धर्म में नारी त्याज्य है।"[2]

एक और स्थान पर भी बौद्ध नारी के प्रति भेदभावमूलक दृष्टिकोण रखते हुए दिखाया गया है। जब दिव्या अपने पुत्र के जीवन की रक्षा के लिए बौद्ध संघ में आश्रय मांगती है तो स्थविर का उत्तर है :–"देवी, धर्म के नियामानुसार स्त्री के अभिभावक की अनुमति के बिना संघ स्त्री को शरण नहीं दे सकता।' उसने निवेदन किया –'परंतु देव, भगवान तथागत ने तो वेश्या अम्बपाली को भी संघ में शरण दी थी।' 'वेश्या स्वतंत्र नारी है, देवी'। स्थविर ने आसन से उठते हुए उत्तर दिया।"[3]

इससे यह स्पष्ट होता है कि नारी की स्वतंत्रता के प्रति बौद्ध धर्म का दृष्टिकोण भी बेहद विसंगितपूर्ण था जिसे यशपाल ने उभारा है।

नारी के संबंध में तीसरा दृष्टिकोण रूद्रधीर के माध्यम से व्यक्त हुआ है जो वर्णश्रम धर्म की व्यावस्था के अनुरूप है। वर्णश्रम व्यवस्था न केवल वर्ण विभेद को प्रश्रय देती है अपितु लिंगभेद को भी। वह नारी को कुलवधू और कुलमाता जैसे शब्दों से बांध लेना चाहती है। नारी की भूमिका सिर्फ वंश बढ़ाने तक ही सीमित हो जाती है। इसी दृष्टिकोण के अंतर्गत रचना के अंत में आचार्य रूद्रधीर दिव्या को मल्लिका का उत्तराधिकार लेने से मना करते हैं और फिर खुद अपना विवाह प्रस्ताव इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं– "देवी, तुम्हारा स्थान नर्तकी वेश्या के आसन पर नहीं। तुम कुलकन्या हो। तुम्हारा स्थान कुलवधू के आसन पर, कुलमाता के आसन पर है।"[4]

किन्तु दिव्या पूरी गहराई से समझती है कि ये सभी आसन सिर्फ नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की कीमत पर

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

उपलब्ध होते हैं। वह जबाब देती है – "आचार्य, कुलवधू का सम्मान, कुलमाता का आदर और कुलमहादेवी का अधिकार आर्य पुरूष का प्रश्रय मात्र है। वह नारी का सम्मान नहीं; उसे भोग करने वाले पराक्रमी पुरूष का सम्मान है। आर्य, अपने स्वत्व का त्याग करके ही नारी वह सम्मान प्राप्त कर सकती है × × × × आर्चाय दासी को क्षमा करें। दासी हीन होकर भी आत्मनिर्भर रहेगी। स्वत्वहीन होकर वह जीवित नहीं रहेगी।"[5]

इन सभी दृष्टिकोणों के विरूद्ध यशपाल ने नारी स्वतंत्रता को दिव्या के माध्यम से प्रस्तावित किया। उनका अपना दृष्टिकोण मुख्यतः मारिश के माध्यम से व्यक्त हुआ है। मारिश चार्वाक दर्शन का समर्थक है, इसलिए उसका दृष्टिकोण किसी भी तरह की आध्यात्मिकता से रहित भौतिकवादी दृष्टिकोण है। वह पारंपरिक मान्यताओं पर चोट करते हुए कई सूक्ष्म बातें कहता है। मारिश की स्पष्ट मान्यता है कि निर्वाण जैसे काल्पनिक सुख मनुष्य को सिर्फ झाँसा देते है। नारी का उद्देश्य निर्वाण न होकर सृष्टि की प्रक्रिया में अपना दायित्व निभाना है जो दायित्व उसे स्वयं प्रकृति ने दिया है। वह अंशुमाला को समझाते हुए कहता है – "भद्रे, नारी सृष्टि का साधन है। सृष्टि की आदि शक्ति का क्षेत्र वह समाज व कुल का केन्द्र है।"

मारिश का मानना है कि नारी को त्याज्य मानना प्रकृति के नियामों को उपेक्षा करना है। प्रकृति ने सृष्टि की निरंतरतता के विचार से नारी को आकर्षण दिया है ताकि पुरूष उसके प्रति आकर्षित होकर सृष्टि की प्रक्रिया में योगदान दे। वह दिव्या की नृत्य–कला की प्रशंसा इन शब्दों में करता है–"भद्रे, तुम्हारी कला तुम्हारी आकर्षण शक्ति का निखार मात्र है जो नारी में सृष्टि की आदि शक्ति है।"

मारिश का यही दृष्टिकोण रत्नप्रभा के आवास पर वहाँ भी व्यक्त हुआ है जहाँ वह एक शिलाखंड से नारी के शरीर की आंशिक मूर्ति बनाता है। वह मूर्ति नारी शरीर के केवल मध्यवर्ती अंशों को व्यक्त करती है। रत्नप्रभा और मारिश का निम्नलिखित वार्तालाप मारिश की नारी दृष्टि बताता है–

"रत्नप्रभा ने मुस्कान से आग्रह किया – 'आर्य, मेरे मत से यह नारी का अंग मात्र है, पूर्ण नारी नहीं!' × × × × मारिश ने उत्तर दिया – 'देवी का कथन उचित है, परन्तु नारी का यही अंग उसके नारीत्व की सार्थकता के लिए पुरूष का आह्वान करता है और फिर उस फलीभूत सार्थकता का पोषण करता है। यही नारी है देवी।"[6]

जब दिव्या स्वतंत्र होने के लिए वेश्या बनने का निर्णय कर लेती है तो मारिश स्पष्टतः बताता है कि वेश्या होना स्वतंत्रता नहीं बल्कि भयानक परतंत्रता है। वह कहता है – "भद्रे, वेश्या की, जनपदकल्याणी की स्वतंत्रता की सार्थकता क्या है? अपनी स्वतंत्रता से वह क्या प्राप्त करती है? × × × × यदि कुलवधू एक पुरूष का भेग्य है तो जनपदकल्याणी वेश्या सम्पूर्ण जनपद और समाज की तृप्ति का साधन है। × × × × उसकी स्वतंत्रता का भोग जन करता है, वह स्वयं नहीं। वह केवल वंचना पाती है।"[7]

मारिश अकेला व्यक्ति है जो नारी की पराधीनता के मूल कारण की पड़ताल करता है। कई लोग दावा करते हैं कि नारी की पराधीनता नारी व पुरूष के जैविक अंतरों के कारण है, इसलिए प्रकृति ने ही नारी को पराधीन बनाया है। मारिश इस कुतर्क को अच्छी तरह जानता है और दिव्या को समझाता है कि यह प्राकृतिक नहीं, सामाजिक समस्या है–

"नारी प्रकृति के विधान से नहीं, समाज के विधाान से भोग्य है। प्रकृति में और समाज में भी स्त्री और पुरूष अन्योन्याश्रय हैं। पुरूष का प्रश्रय पाने से ही नारी परवश है। परन्तु भद्रे! नारी के जीवन की सार्थकता के लिए पुरूष का आश्रय आवश्यक है और नारी पुरूष का आश्रय भी है।"

मारिश के माध्यम से यशपाल बताते हैं कि नारी और पुरूष का संबंध वस्तुतः कैसा होना चाहिए। वे उग्र नारीवाद के इस मत से सहमत नहीं है कि नारी को पुरूषवादी संरचना से लड़ते–लड़ते पुरूष के समान ही हो जाना चाहिए। सीरो के चरित्र के माध्यम से वे इस दृष्टिकोण का खंडन करते हैं। मारिश के रूप में स्वयं यशपाल बताते हैं कि नारी की वास्तविक अभिलाषा क्या है? न तो उसे निर्वाण जैसे मिथ्या सुख चाहिए और न ही उसे कुलवधू जैसे दिखावटी सम्मान चाहिए। वह सीरो की तरह अधिकाधिक पुरूषों का भोग भी नहीं चाहती और न ही माताल वृक्क जैसी निगाह रखने वाले व्यक्तियों के हाथों भोग्या होना चाहती है। वह एक सहज व्यक्ति के रूप में अत्तिव चाहती है जिसके अधिकार और दायित्व आपने पुरूष साथी के समक्ष हों। वह पुरूष को अपना आश्रय मानकर बोझ नहीं बनना चाहती न ही उसे साध्य मानकर अपना व्यक्तित्व खोना चाहती है। वह ऐसा समतमूलक वह समरसतामूलक संबंध चाहती है जिसमें पुरूष व नारी एक दूसरे को आश्रय देते हुए मिल–जुलकर जीवन के संघर्षों में सहभागी हों। यही दृष्टिकोण उपन्यास की अंतिम पंक्यिों में भी व्यक्त हुआ है–

"पथिक बोला –मारिश देवी को राजप्रासाद में महादेवी का आसन अर्पण नहीं कर सकता। मारिश देवी को निर्वाण के मिथ्या चिरन्तन सुख का आश्वासन नहीं दे सकता × × × × वह संसार के धूल–धूससरित मार्ग का पथिक है। उसे मार्ग पर देवी के नारीत्व की कामना में वह अपना पुरूषत्व अर्पण करता है। वह आश्रय का आदान–प्रदान चाहता है। × × × × दिव्या का स्वय आर्द्र हो गया – आश्रय दो आर्य "[8]

संदर्भ :–

1.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / समर्पण
2.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / पृष्ठ 118
3.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / पृष्ठ 119
4.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / पृष्ठ 190
5.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / पृष्ठ 192
6.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / पृष्ठ 150
7.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / पृष्ठ 146
8.दिव्या / यशपाल / लोकभारती–संस्करण–2010 / पृष्ठ 201

© RRIJM 2015, All Rights Reserved